हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

(1955 का अधिनियम संख्यांक 25)[1]

[18 मई, 1955]

हिन्दुओं के विवाह से संबंधित विधि को
संशोधित और संहिताबद्ध
करने के लिए
अधिनियम

भारत गणराज्य के छठे वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :—

प्रारम्भिक

1. संक्षिप्त नाम और विस्तार—(1) यह अधिनियम हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार [2]*** सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है जो उक्त राज्यक्षेत्रों के बाहर हों ।

2. अधिनियम का लागू होना—(1) यह अधिनियम लागू है—

(क) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अन्तर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्राह्मो समाज, प्रार्थनासमाज या आर्यसमाज के अनुयागी भी आते हैं, धर्मत: हिन्दू हो;

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मत: जैन, बौद्ध या सिक्ख हो; तथा

(ग) ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति जो उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित हो और धर्मत: मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक कि यह साबित न कर दिय जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो ऐसा कोई भी व्यक्ति एतस्मिन् उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भागरूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होता ।

स्पष्टीकरण—निम्नलिखित व्यक्ति धर्मत: यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख है :—

(क) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता दोनों ही धर्मत: हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हों,

(ख) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मत: हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था, तथा

(ग) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हिंदू, बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिंदू" पद का ऐसा अर्थ लगाया जाएगा मानो उसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो, यद्यपि धर्मत: हिंदू नहीं है तथापि ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा के अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर लागू होता है ।

3. परिभाषाएं—इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,—

(क) "रूढ़ि" और "प्रथा", पद ऐसे किसी भी नियम का संज्ञान कराते हैं जिसने दीर्घकाल तक निरन्तर और एकरूपता से अनुपालित किए जाने के कारण किसी स्थानीय क्षेत्र, जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के हिन्दुओं में विधि का बल अभिप्राप्त कर लिया हो :

परन्तु यह तब जब कि वह नियम निश्चित हो, और अयुक्तियुक्त या लोकनीति के विरुद्ध न हो: तथा

परंतु यह और भी कि ऐसे नियम की दशा में जो एक कुटुंब को ही लागू हो, उसकी निरंतरता उस कुटुंब द्वारा बंद न कर दी गई हो;

---

[1] इस अधिनियम का, 1963 के विनियम सं० 6 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1-7-1965 से) दादरा और नागर हवेली पर, और 1963 के विनियम सं० 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1-10-1963 से) उपांतरों सहित पांडिचेरी पर विस्तार किया गया ।

[2] 2019 के अधिनियम सं० 34 की धारा 95 और पांचवी अनुसूची द्वारा (31-10-2019 से) "जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय" शब्दों का लोप किया गया ।

COURT BOOK
EMPOWERING LEGAL CLARITY

(ख) "जिला न्यायालय" से अभिप्रेत है ऐसे किसी क्षेत्र में, जिसके लिए कोई नगर सिविल न्यायालय हो, वह न्यायालय और अन्य किसी क्षेत्र में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय तथा इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी अन्य सिविल न्यायालय आता है जिसे राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम में व्यवहृत बातों के बारे में अधिकारितायुक्त विनिर्दिष्ट कर दे;

(ग) "पूर्ण रक्त" और "अर्ध रक्त"—कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे से पूर्ण रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वज से एक ही पत्नी द्वारा अवजनित हों और अर्ध रक्त से तब जब कि वह एक ही पूर्वज से किन्तु भिन्न पत्नियों द्वारा अवजनित हों;

(घ) "एकोदर रक्त"—दो व्यक्ति एक से एकोदर रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जबकि वे एक ही पूर्वजा से किन्तु भिन्न पतियों द्वारा अवजनित हों।

स्पष्टीकरण—खंड (ग) और (घ) में "पूर्वज" के अंतर्गत पिता और "पूर्वजा" के अंतर्गत माता आती है;

(ङ) "विहित" से अभिप्रेत है इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित;

(च) (i) "सपिंड नातेदारी" जब निर्देश किसी व्यक्ति के प्रति हो तो, माता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में तीसरी पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत तीसरी पीढ़ी भी आती है) और पिता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में पांचवीं पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत पांचवीं पीढ़ी भी आती है), जाती है, हर एक दशा में वंश परंपरा सम्पृक्त व्यक्ति से, जिसे पहले पीढ़ी का गिना जाएगा, ऊपर की ओर चलेगी;

(ii) दो व्यक्ति एक दूसरे के "सपिंड" तब कहे जाते हैं जबकि या तो एक उनमें से दूसरे का सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर पूर्वपुरुष हो या जब कि उनका ऐसा कोई एक ही पारंपरिक पूर्वपुरुष, जो, निर्देश उनमें से जिस किसी के भी प्रति हो, उससे सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर हो;

(छ) "प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियां"—दो व्यक्ति प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियों के भीतर कहे जाते हैं—

(i) यदि एक उनमें से दूसरे का पारंपारिक पूर्वपुरुष हो; या

(ii) यदि एक उनमें से दूसरे के पारंपरिक पूर्वपुरुष या वंशज की पत्नी या पति रहा हो, या

(iii) यदि एक उनमें से दूसरे के भाई की या पिता अथवा माता के भाई की, या पितामह अथवा पितामही के भाई की या मातामह अथवा मातामही के भाई की पत्नी रही हो; या

(iv) यदि वे भाई और बहिन, ताया, चाचा और भतीजी, मामा और भांजी, फूफी और भतीजा, मौसी और भांजा या भाई-बहिन के अपत्य, भाई-भाई के अपत्य अथवा बहिन-बहिन के अपत्य हों।

स्पष्टीकरण—खण्ड (च) और (छ) के प्रयोजनों के लिए "नातेदारी" के अन्तर्गत आती है—

(i) पूर्ण रक्त की नातेदारी, तथैव अर्ध या एकोदर रक्त की नातेदारी;

(ii) धर्मज रक्त की नातेदारी, तथैव अधर्मज रक्त की नातेदारी;

(iii) रक्तजन्य नातेदारी, तथैव दत्तक नातेदारी;

और उन खंडों में नातेदारी संबंधी सभी पदों का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा।

4. अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव—इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय—

(क) हिंदू विधि का कोई ऐसा शास्त्रवाक्य, नियम या निर्वचन या उस विधि की भागरूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा जो इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिए इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त कोई भी अन्य विधि, वहां तक प्रभावहीन हो जाएगी जहां तक कि वह इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो।

हिन्दू विवाह

5. हिन्दू विवाह के लिए शर्तें—दो हिंदूओं के बीच विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं, अर्थात् :—

(i) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से, न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो;

[1][(ii) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार—

[1] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 2 द्वारा खण्ड (ii) के स्थान पर प्रतिस्थापित।

COURT BOOK
EMPOWERING LEGAL CLARITY

(क) चित्त-विकृति के परिणामस्वरूप विधिमान्य सम्मति देने में असमर्थ न हो; या

(ख) विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित न रहा हो कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए, अयोग्य हो; या

(ग) उसे उन्मत्तता [1]* * * का बार-बार दौरा न पड़ता हो;]

(iii) विवाह के समय वर ने [2][इक्कीस वर्ष] की आयु और वधू ने [3][अठारह वर्ष] की आयु पूरी कर ली हो;

(iv) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे प्रतिषिद्ध नातेदारी डिग्रियों के भीतर न हों;

(v) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ियां प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे एक दूसरे के सपिण्ड न हों;

[4]* * * * * * *

6. [विवाह में अभिभावकता ।]—बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) निरसित ।

7. हिन्दू विवाह के लिए कर्मकांड—(1) हिन्दू विवाह उसके पक्षकारों में से किसी को भी रूढ़िगत रीतियों और कर्मकांड के अनुसार अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(2) जहां कि ऐसी रीतियों और कर्मकांड के अन्तर्गत सप्तपदी (अर्थात् अग्नि के समक्ष वर और वधू द्वारा संयुक्तत: सात पद चलना) आती हो वहां विवाह पूर्ण और आबद्धकर तब होता है जब सातवां पद चल लिया जाता है ।

8. हिन्दू विवाहों का रजिस्ट्रीकरण—(1) राज्य सरकार हिन्दू विवाहों का साबित किया जाना सुकर करने के प्रयोजन से ऐसे नियम बना सकेगी जो यह उपबन्धित करें कि ऐसे किसी विवाह के पक्षकार अपने विवाह से सम्बद्ध विशिष्टियों को इस प्रयोजन के लिए रखे गए हिन्दू विवाह रजिस्टर में ऐसी रीति में और ऐसी शर्तें के अध्यधीन, जैसी कि विहित की जाएं, प्रविष्ट करा सकेंगे ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह यह उपबन्ध कर सकेगी कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट विशिष्टियों का प्रविष्ट किया जाना उस राज्य में या उसके किसी भाग विशेष में, चाहे सभी दशाओं में, चाहे ऐसी दशाओं में, जो विनिर्दिष्ट की जाएं, वैवश्यक होगा और जहां कि कोई ऐसा निदेश निकाला गया हो, वहां इस निमित्त बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जुर्माने से, जोकि पच्चीस रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(3) इस धारा के अधीन बनाए गए सभी नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मण्डल के समक्ष रखे जाएंगे ।

(4) हिन्दू विवाह रजिस्टर निरीक्षण के लिए सभी युक्तियुक्त समय पर बुला रहेगा और अपने में अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होगा तथा उसमें से प्रमाणित उद्धरण, आवेदन करने और रजिस्ट्रार को विहित फीस का संदाय करने पर, उसके द्वारा दिए जाएंगे ।

(5) इस धारा में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी प्रविष्टि करने में हुआ लोप किसी हिन्दू विवाह की विधि मान्यता पर प्रभाव न डालेगा ।

दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण

9. दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापना— [5]*** जब कि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना प्रत्याहृत कर लिया हो तब व्यथित पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जिला न्यायालय में अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसी अर्जी में किए गए कथनों के सत्य के बारे में तथा इस बात के बारे में कि इसके लिए कोई वैध आधार नहीं है कि आवेदन मंजूर क्यों न कर लिया जाए अपना समाधान हो जाने पर दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन डिक्री कर सकेगा ।

[6][**स्पष्टीकरण**—जहां यह प्रश्न उठता है कि क्या साहचर्य के प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है ।]

---

[1] 1999 के अधिनियम सं० 39 की धारा 2 द्वारा "या मिरगी" शब्दों का लोप किया गया ।
[2] 1978 के अधिनियम सं० 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) "अठारह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[3] 1978 के अधिनियम सं० 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) "पन्द्रह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[4] 1978 के अधिनियम सं० 2 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) खण्ड (vi) का लोप किया गया ।
[5] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 3 द्वारा कोष्ठक और अंक "(1)" का लोप किया गया ।
[6] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 3 द्वारा अन्त:स्थापित ।

[1]* * * * * * *

10. न्यायिक पृथक्करण—[2][(1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।]

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखण्डित कर सकेगा ।

विवाह की अकृतता और विवाह-विच्छेद

11. शून्य विवाह—इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, यदि वह धारा 5 के खण्ड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा [3][दूसरे पक्षकार के विरुद्ध] उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा ।

12. शून्यकरणीय विवाह—(1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, निम्नलिखित आधारों में से किसी पर भी शून्यकरणीय होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल किया जा सकेगा :—

[4][(क) कि प्रत्यर्थी की नपुंसकता के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है; या]

(ख) कि विवाह धारा 5 के खण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट शर्तों का उल्लंघन करता है; या

(ग) कि अर्जीदार की सम्मत्ति या, जहां कि [5][धारा 5 जिस रूप में बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) के प्रारम्भ के ठीक पूर्व विद्यमान थी उस रूप में उसके अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मत्ति अपेक्षित हो] वहां ऐसे संरक्षक की सम्पत्ति, बल प्रयोग द्वारा [6][या कर्मकाण्ड की प्रकृति के बारे में या प्रत्यर्थी से संबंधित किसी तात्त्विक तथ्य या परिस्थिति के बारे में कपट द्वारा] अभिप्राप्त की गई थी; या

(घ) कि प्रत्यर्थी विवाह के समय अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा गर्भवती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, विवाह के बातिलीकरण की कोई अर्जी—

(क) उपधारा (1) के खण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर ग्रहण न की जाएगी, यदि—

(i) अर्जी, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने या कपट का पता चल जाने के एकाधिक वर्ष के पश्चात् दी जाए; या

(ii) अर्जीदार, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के या कपट का पता चल जाने के पश्चात् विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ अपनी पूर्ण सम्मत्ति से पति या पत्नी के रूप में रहा या रही है;

(ख) उपधारा (1) के खण्ड (घ) में विनिर्दिष्ट आधार पर तब तक ग्रहण न की जाएगी जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो जाए, कि—

(i) अर्जीदार विवाह के समय अभिकथित तथ्यों से अनीभज्ञ था;

(ii) कार्यवाही, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, ऐसे प्रारम्भ के एक वर्ष के भीतर और ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों की दशा में, विवाह की तारीख से एक वर्ष के भीतर संस्थित की गई है; और

(iii) [7][उक्त आधार] के अस्तित्व का अर्जीदार को पता चलने के समय से अर्जीदार की सम्मति से कोई वैवाहिक संभोग नहीं हुआ है ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 3 द्वारा उपधारा (2) का लोप किया गया ।
[2] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 4 द्वारा उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[3] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 5 द्वारा अन्त:स्थापित ।
[4] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 6 द्वारा खंड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[5] 1978 के अधिनियम सं० 2 की धार 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) "धारा 5 के अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[6] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 6 द्वारा "या कपट द्वारा" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[7] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 6 द्वारा "डिक्री के आधारों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

COURT BOOK

13. विवाह-विच्छेद—(1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि—

[1][(i) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है; या

(iक) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठान के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है; या]

(iख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि पर अर्जीदार के अभित्यक्त रखा है; या]

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है; या

[2][(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण—इस खण्ड में,—

(क) "मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकार या नि:शक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घ स्थायी विकार या नि:शक्तता (चाहे इसमें वृद्धि की अवसामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार का आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं; या]

[3]* * * * * * *

(v) [3][दूसरा पक्षकार] संचारी रूप से रतिज रोग से पीड़ित रहा है; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है; या

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वभाविकत: सुना होता । [4]***

[4]* * * * * * *

[5][**स्पष्टीकरण**—इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अन्तर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तदनुसार लगाए जाएंगे ।]

[6][(1क) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा—

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के पश्चात् [7][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्ष्ाकारों के बीच सहवास का कोई पुनरारंभ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् [7][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।]

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी—

---

[1] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 7 द्वारा खंड (i) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[2] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 7 द्वारा खण्ड (iii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[3] 2019 के अधिनियम सं० 6 की धारा 5 द्वारा लोप किया गया ।
[4] 1964 के अधिनियम सं० 44 की धारा 2 द्वारा खंड (viii) और खंड (ix) का लोप किया गया ।
[5] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 7 द्वारा अंत:स्थापित ।
[6] 1964 के अधिनियम सं० 44 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।
[7] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 7 द्वारा "दो वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या कि अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठान के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था :

COURT BOOK
EMPOWERING LEGAL CLARITY

परन्तु यह तब जब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थान के समय जीवित हो; या

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् बलात्संग, गुदामैथुन या पशुगमन का [1][दोषी रहा है; या]

[2][(iii) कि हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन [या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की तत्समान धारा 488 के अधीन] कार्यवाही में, पत्नी को भरण-पोषण दिलवाने के लिए पति के विरुद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश के पारित किए जाने के समय से एक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर पक्षकारों के बीच सहवास का पुनरारम्भ नहीं हुआ है;

(iv) कि उसका विवाह (चाहे विवाहोत्तर संभोग हुआ हो या नहीं) उसकी पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने के पूर्व अनुष्ठापित किया गया था और उसने पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् किन्तु अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का निराकरण कर दिया है ।

स्पष्टीकरण—यह खण्ड उस विवाह को भी लागू होगा जो विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया है ।]

[3][**13क. विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को वैकल्पिक अनुतोष**—इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी पर, उस दशा को छोड़कर जिसमें अर्जी धारा 13 को उपधारा (1) के खण्ड (ii), (vi) और (vii) में वर्णित आधारों पर है, यदि न्यायालय मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह न्यायसंगत समझता है तो, वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकेगा ।

13ख. पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद—(1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही है, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।]

14. विवाह से एक वर्ष के भीतर विवाह-विच्छेद के लिए कोई अर्जी उपस्थापित न की जाएगी—(1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन की कोई अर्जी ग्रहण करने के लिए तब तक सक्षम न होगा [4][जब तक कि विवाह की तारीख से उस अर्जी के पेश किए जाने की तारीख तक एक वर्ष बीत न चुका हो :]

परन्तु न्यायालय उन नियमों के अनुसार किए गए आवेदन पर, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, किसी अर्जी का, विवाह की तारीख से [4][एक वर्ष बीतने के पूर्व] भी इस आधार पर उपस्थापित किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा कि मामला अर्जीदार के लिए असाधारण कष्ट का है या प्रत्यर्थी की असाधारण दुराचारिता से युक्त है; किन्तु यदि अर्जी की सुनवाई के समय न्यायालय को यह प्रतीत हो कि अर्जीदार ने अर्जी को उपस्थापित करने की इजाजत किसी दुर्व्यपदेशन या मामले की प्रकृति के प्रच्छादन द्वारा अभिप्राप्त की थी तो वह, डिक्री देने की दशा में, इस शर्त के अध्यधीन डिक्री दे सकेगा कि डिक्री तब तक सप्रभाव न होगी जब तक कि विवाह की तारीख से [4][एक वर्ष का अवसान] न हो जाए अथवा उस अर्जी को ऐसी अर्जी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज कर सकेगा जो [4][उक्त एक वर्ष के अवसान] के पश्चात् उन्हीं या सारत: उन्हीं तथ्यों पर दी जाए जो ऐसे खारिज की गई अर्जी के समर्थन में अभिकथित किए गए थे ।

(2) विवाह की तारीख से [4][एक वर्ष के अवसान] से पूर्व विवाह-विच्छेद की अर्जी उपस्थापित करने की इजाजत के लिए इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन का निपटारा करने में न्यायालय उस विवाह से उत्पन्न किसी अपत्य के हितों पर तथा इस बात पर ध्यान रखेगा कि पक्षकारों के बीच [4][उक्त एक वर्ष के अवसान] से पूर्व मेल-मिलाप की कोई युक्तियुक्त संभाव्यता है या नहीं ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 7 द्वारा "दोषी रहा है" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[2] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 7 द्वारा अंत:स्थापित ।
[3] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 8 द्वारा अंत:स्थापित ।
[4] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

COURT BOOK EMPOWERING LEGAL CLARITY

15. कब विवाह-विच्छेद प्राप्त व्यक्ति पुन:विवाह कर सकेंगे—जब कि विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार ही न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो तो अपील करने के समय का कोई अपील उपस्थापित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की तो गई हो किन्तु खारिज कर दी गई हो तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुन:विवाह करना विधिपूर्ण होगा।

[1]* * * * * * *

[2][**16. शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के अपत्यों की धर्मजता**—(1) इस बात के होते हुए भी कि विवाह धारा 11 के, अधीन अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह का ऐसा अपत्य धर्मज होगा, जो विवाह के विधिमान्य होने की दशा में धर्मज होता चाहे ऐसे अपत्य का जन्म विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् हुआ हो और चाहे उस विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री इस अधिनियम के अधीन मंजूर की गई हो या नहीं और चाहे वह विवाह इस अधिनियम के अधीन अर्जी से भिन्न आधार पर शून्य अभिनिर्धारित किया गया हो या नहीं।

(2) जहां धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री मंजूर की जाती है वहां डिक्री की जाने से पूर्व जनित या गर्भाहित ऐसा कोई अपत्य, जो यदि विवाह डिक्री की तारीख को अकृत किए जाने की बजाय विघटित कर दिया गया होता तो विवाह के पक्षकारों का धर्मज अपत्य होता, अकृतता की डिक्री होते हुए भी उनका धर्मज अपत्य समझा जाएगा।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे विवाह के किसी ऐसे अपत्य को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा अकृत किया गया है, उसके माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति में या सम्पत्ति के लिए कोई अधिकार किसी ऐसी दशा में प्रदान करती है जिसमें कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो वह अपत्य अपने माता-पिता का धर्मज अपत्य न होने के कारण ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने में असमर्थ होता।]

17. द्विविवाह के लिए दंड—यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दो हिन्दुओं के बीच अनुष्ठापित किसी विवाह की तारीख पर ऐसे विवाह के किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित था या थी तो ऐसा विवाह शून्य होगा और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और 495 के उपबन्ध उसे तदनुसार लागू होंगे।

18. हिन्दू विवाह की कतिपय अन्य शर्तों के उल्लंघन के लिए दण्ड—हर व्यक्ति जो अपना कोई ऐसा विवाह उपाप्त करेगा जो धारा 5 के खण्ड (iii), (iv) [3][और (v)] में विनिर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन में इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया हो वह—

[4][(क) धारा 5 के खंड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा अथवा दोनों से ;]

(ख) धारा 5 के खण्ड (iv) या खण्ड (v) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से, [5]* * *

दंडनीय होगा।

अधिकारिता और प्रक्रिया

[6][**19. वह न्यायालय जिसमें अर्जी उपस्थापित की जाएगी**—इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी उस जिला न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी जिसकी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर—

(i) विवाह का अनुष्ठान हुआ था; या

(ii) प्रत्यर्थी, अर्जी के पेश किए जाने के समय, निवास करता है; या

(iii) विवाह के पक्षकारों ने अंतिम बार एक साथ निवास किया था; या

[7][(iiiक) यदि पत्नी अर्जीदार है तो जहां वह अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रही है, या]

(iv) अर्जीदार के अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रहा है, यह ऐसे मामले में, जिसमें प्रत्यर्थी उस समय ऐसे राज्यक्षेत्र के बाहर निवास कर रहा है जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है अथवा वह जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उस से अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे, में, यदि वह जीवित होता तो, स्वभाविकतया सुना होता।]

---

[1] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 10 द्वारा परन्तुक का लोप किया गया।
[2] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 11 द्वारा धारा 16 के स्थान पर प्रतिस्थापित।
[3] 1978 के अधिनियम सं० 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा "(v) और (vi)" के स्थान पर प्रतिस्थापित।
[4] 2007 के अधिनियम सं० 6 की धारा 20 द्वारा प्रतिस्थापित।
[5] 1978 के अधिनियम सं० 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) "और" शब्द का लोप किया गया।
[6] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 12 द्वारा धारा 19 के स्थान पर प्रतिस्थापित।
[7] 2003 के अधिनियम सं० 50 की धारा 4 द्वारा अंत:स्थापित।

COURT BOOK
EMPOWERING LEGAL CLARITY

20. अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन—(1) इस धारा के अधीन उपस्थापित हर अर्जी उन तथ्यों को जिन पर अनुतोष का दावा आधारित हो इतने स्पष्ट तौर पर कथित करेगी जितना उस मामले की प्रकृति अनुज्ञात करे [1][और धारा 11 के अधीन अर्जी को छोड़कर] ऐसी हर अर्जी [1][यह भी कथित करेगी] कि अर्जीदार और विवाह के दूसरे पक्ष के बीच कोई सन्धि नहीं है।

(2) इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली हर अर्जी में अन्तर्विष्ट कथन वादपत्रों के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति से अर्जीदार या अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा सत्यापित किए जाएंगे और सुनवाई के समय साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होंगे।

21. 1908 के अधिनियम संख्यांक 5 का लागू होना—इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के और उन नियमों के जो उच्च न्यायालय इस निमित्त बनाए, अध्यधीन यह है कि इस अधिनियम के अधीन सब कार्यवाहियां जहां तक हो सकेगा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 द्वारा विनियमित होंगी।

[2][**21क. कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति**—(1) जहां—

(क) इस अधिनियम के अधीन कोई अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए पेश की गई है; और

(ख) उसके पश्चात् इस अधिनियम के अधीन कोई दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए, चाहे उसी जिला न्यायालय में अथवा उसी राज्य के या किसी भिन्न राज्य के किसी भिन्न जिला न्यायालय में पेश की गई है,

वहां ऐसी अर्जियों के संबंध में उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रीति से कार्यवाही की जाएगी।

(2) ऐसे मामले में जिसे उपधारा (1) लागू होती है,—

(क) यदि ऐसी अर्जियां एक ही जिला न्यायालय में पेश की जाती हैं तो दोनों अर्जियों का विचार और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जाएगी;

(ख) यदि ऐसी अर्जियां भिन्न-भिन्न जिला न्यायालयों में पेश की जाती हैं तो बाद वाली पेश की गई अर्जी उस जिला न्यायालय को अन्तरित की जाएगी जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी, और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनाका निपटारा उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ किया जाएगा जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी।

(3) ऐसे मामले में, जिसे उपधारा (2) का खंड (ख) लागू होता है, यथास्थिति, वह न्यायालय या सरकार, जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से, जिसमें बाद वाली अर्जी पेश की गई है, उच्च न्यायालय को जिसमें पहले वाली अर्जी लम्बित है, अन्तरित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन सक्षम है, ऐसी वाद वाली अर्जी का अन्तरण करने के लिए अपनी शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करेगी मानो वह उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए सशक्त की गई है।

21ख. इस अधिनियम के अधीन अर्जियों के विचारण और निपटारे से सम्बन्धित विशेष उपबन्ध—(1) इस अधिनियम के अधीन अर्जी का विचारण, जहां तक कि न्याय के हित से संगत रहते हुए उस विचारण के बारे से साध्य हो, दिन प्रतिदिन तब तक निरन्तर चालू रहेगा जब तक कि वह समाप्त न हो जाए किन्तु उस दशा में नहीं जिसमें न्यायालय विचारण का अगले दिन से परे के लिए स्थगन उन कारणों से आवश्यक समझे जो लेखबद्ध किए जाएंगे।

(2) इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी का विचारण जहां तक संभव हो शीघ्र किया जाएगा और प्रत्यर्थी पर अर्जी की सूचना की तामील होने की तारीख से छह मास के अन्दर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा।

(3) इस अधिनियम के अधीन हर अपील की सुनवाई जहां तक संभव हो शीघ्र की जाएगी और प्रत्यर्थी पर अपील की सूचना की तामील होने की तारीख से तीन मास के अंदर सुनवाई समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा।

21ग. दस्तावेजी साक्ष्य—किसी अधिनियमिति में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी यह है कि इस अधिनियम के अधीन अर्जी के विचारण को किसी कार्यवाही में कोई दस्तावेज साक्ष्य में इस आधार पर अग्राह्य नहीं होगी कि वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित या रजिस्ट्रीकृत नहीं है।]

[3][**22. कार्यवाहियों का बन्द कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना**—(1) इस अधिनियम के अधीन हर कार्यवाही बन्द कमरे में की जाएगी और किसी व्यक्ति के लिए ऐसी किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी बात को मुद्रित या प्रकाशित करना विधिपूर्ण नहीं होगा किन्तु उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय को छोड़कर जो उस न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा से मुद्रित या प्रकाशित किया गया है।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 13 द्वारा "और वह यह और भी कथित करेगी" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

[2] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 14 द्वारा अन्त:स्थापित।

[3] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 15 द्वारा धारा 22 के स्थान पर प्रतिस्थापित।

COURT BOOK

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबन्धों के उल्लंघन में कोई बात मुद्रित या प्रकाशित करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।]

23. कार्यवाहियों में डिक्री—(1) यदि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में, चाहे उसमें प्रतिरक्षा में की गई हो या नहीं, न्यायालय का समाधान हो जाए कि—

(क) अनुतोष अनुदत्त करने के आधारों में से कोई न कोई आधार विद्यमान है और अर्जीदार [1][उन मामलों को छोड़कर, जिनमें उसके द्वारा धारा 5 के खण्ड (ii) के उपखंड (क), उपखण्ड (ख) या उपखण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर अनुतोष चाहा गया है] अनुतोष के प्रयोजन से अपने ही दोष या निर्योग्यता का किसी प्रकार फायदा नहीं उठा रहा या उठा रही है, और

(ख) जहां कि अर्जी का आधार [2]*** धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (i) में निर्दिष्ट आधार हो वहां न तो अर्जीदार परिवादित कार्य या कार्यों का किसी प्रकार से उपसाधक रहा है और न उसने उनका मौनानुमोदन या उपमर्षण किया है अथवा जहां कि अर्जी का आधार क्रूरता हो वहां अर्जीदार ने उस क्रूरता का किसी प्रकार उपमर्षण नहीं किया है, और

[1][(खख) जब विवाह-विच्छेद पारस्परिक सम्मत्ति के आधार पर चाहा गया है, और ऐसी सम्मति बल, कपट या असयमक् अभियोजित नहीं की जाती है, और]

(ग) [3][अर्जी (जो धारा 11 के अधीन पेश की गई अर्जी नहीं है)] प्रत्यर्थी के साथ दुस्सन्धि करके उपस्थापित या अभियोजित नहीं की जाती है, और

(घ) कार्यवाही संस्थित करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है, और

(ङ) अनुतोष अनुदत्त न करने के लिए कोई अन्य वैध आधार नहीं है, तो ऐसी ही दशा में, किन्तु अन्यथा नहीं, न्यायालय तद्नुसार ऐसा अनुतोष डिक्री कर देगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व, यह न्यायालय का प्रथमत: कर्तव्य होगा कि वह ऐसी हर दशा में, जहां कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रहते हुए ऐसा करना सम्भव हो पक्षकारों के बीच मेल मिलाप कराने का पूर्ण प्रयास करे :

[1][परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (ii), खंड (iii), खंड (iv), खंड (v), खंड (vi) या खंड (vii) में विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर अनुतोष चाहा गया है ।]

[1][(3) ऐसा मेल-मिलाप कराने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजन के लिए न्यायालय, यदि पक्षकार ऐसा चाहते तो या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे तो, कार्यवाहियों को 15 दिन से अनधिक की युक्तियुक्त कालावधि के लिए स्थगित कर सकेगा और उस मामले को पक्षकारों द्वारा इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को या यदि पक्षकार कोई व्यक्ति नामित करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय द्वारा नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को इन निदेशों के साथ निर्देशित कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बारे में रिपोर्ट दे कि मेल-मिलाप कराया जा सकता है या नहीं तथा करा दिया गया है या नहीं और न्यायालय कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(4) ऐसे हर मामले में, जिसमें विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद द्वारा होता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय हर पक्षकार को उसकी प्रति मुफ्त देगा ।]

[4][**23क. विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को अनुतोष**—विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी अर्जीदार के जारकर्म, क्रूरता या अधित्यजन के आधार पर चाहे गए अनुतोष का न केवल विरोध कर सकेगा बल्कि वह उस आधार पर इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष के लिए प्रतिदावा भी कर सकेगा और यदि अर्जीदार का जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन साबित हो जाता है तो न्यायालय प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा अनुतोष दे सकेगा जिसके लिए वह उस दशा में हकदार होता या होती जिसमें उसने उस आधार पर ऐसे अनुतोष की मांग करते हुए अर्जी उपस्थापित की होती ।]

24. वाद लम्बित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय—जहां कि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत हो कि, यथास्थिति, पति या पत्नी की ऐसी कोई स्वतंत्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहां वह पति या पत्नी के आवेदन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत होती हो :

---

[1] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 16 द्वारा अन्त:स्थापित ।
[2] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 16 द्वारा कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।
[3] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 16 द्वारा "अर्जी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[4] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 17 द्वारा अन्त:स्थापित ।

[1][परन्तु कार्यवाही के व्ययों और कार्यवाही के दौरान ऐसी मासिक राशि के संदाय के लिए आवेदन को यथासंभव, यथास्थिति, पत्नी या पति पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

COURT BOOK

25. स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण—(1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, यथास्थिति, पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि प्रत्यर्थी [2]* * * उसके भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा कालिक राशि, जो प्रत्यर्थी की अपनी आय और अन्य सम्पत्ति को, यदि कोई हो आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को [3][तथा पक्षकारों के आचारण और मामले की अन्य परिस्थितियों को देखते हुए] न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, आवेदक या आवेदिका के जीवन-काल से अनधिक अवधि के लिए संदत्त करे और ऐसा कोई भी संदाय यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर सम्पत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेश में फेरफार कर सकेगा या उसे उपान्तरित अथवा विखण्डित कर सकेगा ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह पतिव्रता नहीं रह गई है, या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाहबाह्य मैथुन किया है, [2][तो वह दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसे किसी आदेश को ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, परिवर्तित, उपांतरित या विखंडित कर सकेगा ।]

26. अपत्यों की अभिरक्षा—इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तव अपत्यों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासंभव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय-समय पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबन्ध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात् इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसे अपत्य की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-समय पर ऐसे आदेश और उपबन्ध कर सकेगा जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लम्बित रहते ऐसी डिक्री या अन्तरिम आदेश द्वारा किए जा सकते थे और न्यायालय पूर्वतन किए गए ऐसे किसी आदेश या उपबंध को समय-समय पर प्रतिसंहृत या निलंबित कर सकेगा अथवा उसमें फेर-फार कर सकेगा :

[4][परंतु ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए कार्यवाही लंबित रहने तक अप्राप्तवय अपत्यों के भरण-पोषण और शिक्षा की बाबत आवेदन को यथासंभव, प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

27. सम्पत्ति का व्ययन—इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में, न्यायालय ऐसी सम्पत्ति के बारे में, जो विवाह के अवसर पर या उसके आसपास उपहार में दी गई हो और संयुक्तत: पति और पत्नी दोनों की हो, डिक्री में ऐसे उपबन्धित कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे ।

[5][**28. डिक्रियों और आदेशों की अपीलें**—(1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियां, उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उसी प्रकार अपीलनीय होंगी जैसे उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलीय होती है और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यत: होती हैं ।

(2) धारा 25 या धारा 26 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए आदेश उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, तभी अपीलनीय होंगे जब वे अन्तरिम आदेश न हों और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होंगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यत: होती है ।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

(4) इस धारा के अधीन हर अपील डिक्री या आदेश की तारीख [6][नब्बे दिन की कालावधि] के अन्दर की जाएगी ।

28क. डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन—इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्रियों और आदेशों का तत्समय प्रवर्तन किया जाता है ।]

---

[1] 2001 के अधिनियम सं० 49 की धारा 8 द्वारा अन्त:स्थापित ।
[2] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 18 द्वारा "जब तक आवेदक या आवेदिका अविवाहित रहे तब तक" शब्दों का लोप किया गया ।
[3] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।
[4] 2001 के अधिनियम सं० 49 की धारा 9 द्वारा अन्त:स्थापित ।
[5] 1976 के अधिनियम सं० 68 की धारा 19 द्वारा प्रतिस्थापित ।
[6] 2003 के अधिनियम सं० 50 की धारा 5 द्वारा प्रतिस्थापित ।

व्यावृत्तियां और निरसन

29. व्यावृत्तियां—(1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हिन्दुओं के बीच, अनुष्ठापित ऐसा विवाह, जो अन्यथा विधिमान्य हो, केवल इस तथ्य के कारण, अविधिमान्य या कभी अविधिमान्य रहा हुआ न समझा जाएगा कि उसके पक्षकार एक ही गोत्र या प्रवर के थे अथवा, विभिन्न धर्मों, जातियों या एक ही जाति की विभिन्न उपजातियों के थे ।

(2) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात रूढ़ि से मान्यताप्राप्त या किसी विशेष अधिनियमिति द्वारा प्रदत्त किसी ऐसे अधिकार पर प्रभाव डालने वाली न समझी जाएगी जो किसी हिन्दू विवाह का वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विघटन अभिप्राप्त करने का अधिकार हो ।

(3) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात तत्समय-प्रवृत्त किसी विधि के अधीन होने वाली किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रभाव न डालेगी जो किसी विवाह को बातिल और शून्य घोषित करने के लिए या किसी विवाह को बातिल अथवा विघटित करने के लिए या न्यायिक पृथक्करण के लिए हो और इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित हो और ऐसी कोई भी कार्यवाही चलती रहेगी और अवधारित की जाएगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।

(4) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43) में अन्तर्विष्ट किसी ऐसे उपबन्ध पर प्रभाव न डालेगी जो हिन्दुओं के बीच उस अधिनियम के अधीन, इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व चाहे पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों के संबंध में हो ।

30. [निरसन ।]—रिपीलिंग एण्ड अमेंडिंग ऐक्ट, 1960 (1960 का 58) की धारा 2 और प्रथम अनुसूची द्वारा निरसित ।